२१

अस्तेय-व्रत : आदर्श प्रामाणिकता

आचार्य शय्यंभव जैसे महान् श्रुतधर शास्त्रकारों ने कहा है—

"चित्तमन्तमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंत-सोहणमेत्तं पि, उग्गहंसि अजाइया ।।"

अजीव वस्तु हो या निर्जीव, कम हो या ज्यादा, पर मालिक की आज्ञा के बिना कोई भी वस्तु नहीं लेनी चाहिए। दाँत कुरेदने का तिनका भी बिना आज्ञा के नहीं लिया जा सकता है। जब अस्तेय-व्रत पर सम्यक् रूप से विचार करेंगे, तो यह प्रतीत होगा कि इस व्रत का पालक ही अहिंसा और सत्य व्रत का पालक बन सकता है।

अपनी वस्तु को छोड़कर दूसरे की किसी भी वस्तु को गलत इरादे से हाथ लगाना चोरी है। दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के अपने उपयोग में लाना अदत्तादान है। इस अदत्तादान का त्याग ही अस्तेय व्रत है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि मार्ग में पड़ी हुई दूसरे की वस्तु को अपनी बना लेना भी चोरी है। मन, वचन और काय से चोरी करना, कराना, और अन्ततः अनुमोदन करना भी चोरी है।

किसी भी वस्तु को बिना आज्ञा लेने का नियम इस व्रत में बताया गया है। जिस वस्तु की हमको आवश्यकता न हो, वह वस्तु दूसरों के पास से लेना भी चोरी है। फिर भले ही वह वस्तु दूसरों की आज्ञा से ही क्यों न ली गई हो, पर बिना जरूरत के वस्तु लेना भी चोरी ही है। अमुक मधुर सुस्वादु फल आदि खाने की मनुष्य को कोई खास आवश्यकता नहीं है, फिर भी यदि वह उन्हें खाने लग जाए तो वह भी चोरी ही है। मनुष्य अपनी गरिमा को समझता नहीं है, इसी से उस भुक्खड़ व्यक्ति से ऐसी चोरी हो जाती है। इस व्रत के आराधक को इस प्रकार अचौर्य का व्यापक अर्थ घटाना चाहिए। जैसे-जैसे वह इस व्रत का विशाल रूप में पालन करता जाएगा, वैसे-वैसे इस व्रत की महत्ता और उसका रहस्य भी समझता जाएगा।

अस्तेय का इससे भी गहरा अर्थ यह है कि पेट भरने और शरीर टिकाने के लिए जरूरत से अधिक संग्रह करना भी चोरी ही है। एक मनुष्य आवश्यकता से अधिक रखने लग जाए, तो यह स्वाभाविक ही है कि दूसरे जरूरतमन्दों को आवश्यकता पूर्ति के लिए भी कुछ नहीं मिल सकेगा। दो जोड़ी कपड़ों के बजाय यदि कोई मनुष्य बीस जोड़ी कपड़े रखे, तो इससे स्पष्ट ही दूसरे पाँच-सात गरीब आदमियों को वस्त्र-हीन होना पड़ सकता है। अतः किसी भी वस्तु का अधिक संग्रह करना चोरी है।

जो वस्तु जिस उपयोग के लिए मिली है, उसका वैसा उपयोग नहीं करना भी चोरी है। शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, शक्ति आदि की प्राप्ति जन-सेवा तथा आत्म-आराधना के लिए हुई है, उनका उपयोग जन-सेवा तथा आत्माराधना में न कर, एकान्तरूप से भोगोपभोग में करना भी सूक्ष्म दृष्टि से चोरी ही है। शरीरादि का उपयोग परमार्थ के लिए न करते हुए, स्वार्थ के लिए करना भी एक तरह की चोरी ही है।

उपनिषद् में अश्वपति राजा अपने राज्य की महत्ता कोव ताते हुए एक वाक्य कहता है—'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः'—चोर और कृपण को वह एक ही श्रेणी में रखता है। गहरा विचार करेंगे, तो प्रतीत होगा कि कृपण ही चोर के जनक होते हैं। अतः समाज

१. दशवैकालिक सूत्र, ६, १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अस्तेय व्रत की प्रतिष्ठा कायम करने के लिए कृपणों को अपनी कृपणता त्याग देनी चाहिए और इसके बदले में उदारता प्रकट करनी चाहिए।

चोरी के प्रमुख चार प्रकार होते हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से चोरी करना यानि वस्तुओं की चोरी। सजीव और निर्जीव—दोनों प्रकार की चोरी द्रव्य चोरी कही जाती है। किसी के पशु चुरा लेना या किसी की स्त्री का अपहरण कर लेना, किसी का बालक चुरा लेना या किसी के फलफूल तोड़ना, यह सजीव चोरी है। सोना-चाँदी हीरा, माणिक, मोती आदि की चोरी, निर्जीव चोरी है। कर की चोरी का भी निर्जीव चोरी में समावेश होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मार्ग में पड़ी हुई ऐसी कोई निर्जीव वस्तु, जिसका कोई मालिक न हो, उठा कर ले लेना भी चोरी है।

किसी के घर या खेत पर अनुचित रीति से अपना अधिकार कर लेना, यह क्षेत्र की चोरी है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे अपने कब्जे में कर लेता है या उसके साधनों को, आर्थिक स्रोतों को हड़प लेता है—यह भी क्षेत्र-चोरी के अन्तर्गत है।

वेतन, किराया, ब्याज आदि देने-लेने के समय नियत समय की न्यूनाधिकता करना काल की चोरी है। जो समय, जिस कर्तव्य के अनुष्ठान का है, उसे निश्चित समय पर न करना, काल की चोरी है। इसका अर्थ है—आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा आदि किसी-न-किसी रूप में चोरी है।

किसी कवि, लेखक या वक्ता के भावों को, विचारों को लेकर अपने नाम से लिखना, प्रकाशित करना भाव-चोरी है। चोरी का विचार करना भी भाव-चोरी है। भाव-चौर्य-कर्म का क्षेत्र व्यापक है।

एक लेखक ने लिखा है—"He who purposely cheats his friends, would cheat his God". अर्थात् जो व्यक्ति अपने मित्र को धोखा देता है, ठगता है, वह एक दिन ईश्वर को भी ठगेगा। दूसरे एक लेखक ने लिखा है—"Dishonesty is a for Saking of permanent for temporary advantages" अर्थात् अप्रामाणिकता या चोरी करना, यह क्षणिक लाभ के लिए शाश्वत श्रेय को गुम कर देने जैसा है।

अपने हक के अतिरिक्त की वस्तु, चाहे जिस किसी प्रकार से ले लेना चोरी है। कोई सरकारी नौकर-आफीसर किसी का कोई काम करके रिश्वत या इनाम ले तो यह भी चोरी है। जबकि उनकी नौकरी उसी काम के लिए है, तो फिर निर्धारित वेतन के अतिरिक्त रिश्वत आदि लेना चोरी ही है। अपने असाध्य रोग की खबर हो, फिर भी बीमा कराना, यह भी एक तरह की चोरी है। यह स्पष्ट ही अनैतिक कर्म है, बीमा कम्पनी को ठगना है।

आये दिनों चोरियों की प्रकारता बढ़ती जा रही है। चोरी का पाप चोरी करने वाले को तो लगता ही है, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं, तो परोक्ष रूप में वे व्यक्ति भी इस पाप-कर्म के कम भागीदार नहीं होते, जो समाज की परिस्थिति की तरफ ध्यान नहीं देते। आँख-मूंद कर निरन्तर अनावश्यक संग्रह में ही लगे रहते हैं। आज एक ओर कारखाने अधिकाधिक माल पैदा कर रहे हैं, तो दूसरी ओर कृत्रिम अभाव की स्थिति पैदा कर उद्योगपति और श्रीमन्तों की शोषण-नीति और संग्रह-वृत्ति प्रतिदिन चोरी के नय-नये तरीके पैदा कर रही है।

चोरी का अन्तरंग कारण :

यदि चोरी का अन्तरंग कारण खोजेंगे, तो प्रतीत होगा कि उसका मूल मानव की बेलगाम बढ़ती हुई अर्थ-लोलुपता में ही स्थित है। जिसके पास आज सौ रुपये है, वह हजार कमाने की धुन में है। हजार रुपये वाला, दस हजार और दस हजार वाला उसे लाख करने की लालसा में फंसा हुआ है। पैसों की इस दौड़-धूप में मनुष्य नीति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रामाणिकता को भी भूल गया है। येन-केन-प्रकारेण धन-संचय करने की ओर ही लगा हुआ है। इस प्रकार 'अर्थ-लोलुपता' चोरी का अन्तरंग कारण है।

१. **बेकारी :** चोरी के बहुत कारण हैं, जिनमें चार कारण मुख्य हैं। बेकारी, इनमें प्रथम कारण है। काम-धन्धा नहीं मिलने से, बेकार हो जाने से, फलतः अपनी आजीविका ठीक तरह नहीं चला सकने के कारण कितने ही दुर्बल मनोवृत्ति के अज्ञानी व्यक्ति चोरी करना सीखते हैं। जो प्रबुद्ध और प्रामाणिक होते हैं, वे तो मरण पसन्द करते हैं, पर चोरी करना नहीं चाहते हैं। परन्तु, ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं। अधिकांश वर्ग तो बेकारी से घबरा कर काम-धन्धा नहीं मिलने से आखिरकार पेट का खड्डा भरने के लिए चोरी का मार्ग पकड़ लेता है।

२. **अपव्यय :** चोरी का दूसरा कारण—अपव्यय है। अपव्यय करना भी चोरी सीखाता है। अधिकांशतः श्रीमंताई के अहंकार या भोग-वृत्ति के कारण मनुष्य फिजूल-खर्ची बन जाता है। एक बार हाथ के खुल जाने पर, फिर उसे काबू में रखना कठिन हो जाता है। अपव्ययी के पास पैसा टिकता नहीं है और जब वह निर्धन हो जाता है, तब वह अपनी फिजूल खर्ची की आदत से इधर-उधर किसी-न-किसी रूप में चोरी करने लग जाता है। अनेक व्यक्ति विवाह आदि प्रसंग में कर्ज लेकर खर्च करते हैं, परन्तु बाद में जब उसे चुकाना पड़ता है और कोई आमदनी का जरिया नहीं होता है, तब वे चोरी का मार्ग ग्रहण करते हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की फिजूल खर्ची या निरर्थक खर्च मनुष्य को अनैतिक मार्ग पर खींच ले जाता है। आज के मनुष्य दुनिया की नजरों में, जो खुली चोरी कही जाती है उससे भले ही दूर रहें, पर शोषण-अनीति की गुप्त चोरी की तरफ वे झुकते ही हैं।

३. **मान-प्रतिष्ठा :** चोरी का तीसरा कारण मान-प्रतिष्ठा है। मनुष्य बड़ा बनने के लिए विवाह आदि प्रसंगों में अपनी शक्ति से बढ़कर खर्च करता है। पश्चात् इस क्षति की पूर्ति कैसे करता है? अनीति और शोषण द्वारा ही तो यह पूर्ति होती है न?

४. **आदत :** चोरी का चौथा कारण है—मन की आदत। अशिक्षा और कुसंगति से कितने ही व्यक्तियों की आदत चोरी करने की हो जाती है। ये लोग चोरी करते हैं, क्यों करते हैं? इसका कोई उत्तर नहीं? बस, एक आदत है, कहीं से चुपके से जो मिल जाए, उठा लेना।

कुछ भी हो, किसी भी रूप में हो, चोरी का आन्तरिक कारण अर्थ-लोलुपता है, जो कि संतोष-वृत्ति प्राप्त करने से दूर हो सकती है। और, वह संतोष-वृत्ति धर्माचरण से ही प्राप्त की जा सकती है।

अस्तेय के अतिचार :

अस्तेय व्रत के पाँच अतिचार हैं। इस संदर्भ में तत्त्वार्थ का यह सूत्र द्रष्टव्य है—"स्तेन-प्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिक-मानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहारा।

१. **स्तेन-प्रयोग :** किसी को चोरी करने की प्रेरणा देना तथा उसके काम से सहमत होना, यह प्रथम अतिचार-दोष है। काला-बाजार (Black Market) से चोरी का अनाज ले कर किसी ने जीमनवार (प्रीति भोज) किया हो, उसमें भोजन करने के लिए जाना भी चोरी के काम में सहमत होने जैसा ही है। कुछ 'धन्ना सेठ' कहे जाने वाले लोग तस्कर-व्यापार से अर्जित पैसे के बल पर विवाह आदि प्रसंगों में परम्परा-गत रूढ़ियों एवं बड़े घरों के बड़े रीति-रिवाज आदि के वश में हो लम्बे-चौड़े जीमनवार करते हैं और अज्ञानी मानवों की वाने-वाही लूटते हैं। काल-बाजार की वस्तु खरीदने वाला स्वयं तो पाप का भागीदार बनता ही है, पर साथ में काला-बाजार करने वाले को उत्तेजन भी देता है। चोरी किसी एक व्यक्ति ने की हो, फिर भी उस काम में किसी भी तरह से भाग लेने वाला भी दोषी माना गया है। इस प्रकार शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के चोर कहे हैं। काला-बाजार से वस्तुओं को बेचने वाले, खरीदने वाले, रसोई करने-वाले, भोजन करने वाले, इस कार्य के प्रशंसक आदि, ये सभी कम-ज्यादा अंश में चोरी के पाप के भागीदार कहे जाते हैं।

२. **तदाहृतादान :** चोर द्वारा चुराई हुई वस्तुएँ लेना, तदाहृतादान है। चोरी की हुई वस्तु सदा सस्ती ही बेची जाती है, जिससे लेने वाले का दिल ललचाता है, और वह खुश हो कर खरीद लेता है। कोई शक्कर, चावल आदि राशन की वस्तुएँ चोरी करके लाया हो और आप उन्हें खरीदते हैं, तो उससे भी यह अतिचार लगता है।

३. **विरुद्ध-राज्यातिक्रम :** प्रजा के हितार्थ सरकार ने जो नीति-नियम बनाये हों, उनका भंग करना 'विरुद्ध-राज्यातिक्रम' अतिचार है। यदि प्रजा इस अतिचार-दोष से मुक्त रहे, तो सरकार को प्रजा-हित के कार्य करना सरल बन जाए।

४. **हीनाधिक-मानोन्मान :** कम-ज्यादा तोलना-मापना, न्यूनाधिक लेना-देना, इस अतिचार में आता है। आपकी दुकान पर समझदार या नासमझ, वृद्ध या बालक या स्त्री चाहे कोई भी व्यक्ति वस्तु खरीदने आए, तो आपको सबके साथ एक जैसा प्रामाणिक व्यवहार ही रखना चाहिए। अप्रामाणिकता भी मूल में चोरी है। अनजान ग्रामीण से अधिक मूल्य लेना साहूकारी ठगाई है, दिन की चोरी है। चोरी, चाहे दिन की हो, या रात की, चोरी ही कही जाती है।

५. **प्रतिरूपक-व्यवहार :** मूल्यवान वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर या असली के स्थान पर नकली वस्तु बनाकर बेचना 'प्रतिरूपक-व्यवहार' अतिचार-दोष है। आज प्रायः हर चीज में मिलावट देखी जाती है।

घी के व्यापारी शुद्ध घी में वनस्पति घी या चर्बी आदि मिलाते हैं। आजकल वनस्पति घी में भी चर्बी मिलायी जाने लगी है। दूधवाले दूध में पानी मिलाते हैं। शक्कर में आटा, कपड़े धोने के सोढ़े में चना, जीरा और अजवाइन के उसी रंग के मिट्टी-कंकर, मिलाये जाते हैं। जीरा में किस प्रकार मिलावट की जाती है, इस सम्बन्ध में कुछ वर्ष पहले 'हरिजन सेवक' में एक लेख प्रकाशित हुआ था। घास को जीरा के आकार में काटने के कई कारखाने चलते हैं। पहले जीरा के आकार में घास के टुकड़े किए जाते हैं, फिर उन पर गुड़ का पानी छिड़का जाता है। इस प्रकार नकली जीरा तैयार करके थैली में भर कर असली जीरे के नाम से बेचा जाता है। खाने के तेल में शुद्ध किया हुआ गंध रहित घासलेट तैल या चर्बी को मिलाया जाता है। खाद्य पदार्थों में इस प्रकार जहरीली वस्तुओं का संमिश्रण करना कितना भयंकर काम है? क्या यह नैतिक-पतन की परा-काष्ठा नहीं है? काली मिर्च के भाव बहुत बढ़ जाने से व्यापारी लोग उसमें पपीते के बीजों का सम्मिश्रण करने लग गए हैं। गेहूँ, चावल, चना आदि में भी उसी रंग के कंकरों का मिश्रण किया जाता है। इस प्रकार, जो भारतीय नागरिक नैतिक-दृष्टि से विदेशों में ऊँचा समझा जाता था, वही आज सब से नीचा समझा जाने लगा है। दवाएँ भी नकली बनने लग गई हैं। नैतिक-पतन की कोई सीमा ही नहीं रह गई है। बीमार मनुष्यों के उपयोग में आने वाली दवाओं में भी—जो उनके स्वास्थ्य एवं जीवन-रक्षा के लिए हैं, जहाँ इस तरह मिलावट की जाती हो, गलत एवं हानिप्रद दवाएँ बेची जाती हों, तो कहिए भारत जैसे धर्म-प्रधान देश के लिए यह कितनी लज्जास्पद बात है।

पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन के द्वारा बेची जाने वाली अपनी साधारण वस्तुओं का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन करना भी, इस अतिचार में आता है।

इन अतिचारों का यदि सर्व-साधारण-जन त्याग कर दें, तो पृथ्वी पर स्वर्ग उतारा जा सकता है। स्पष्ट है, इन सभी अतिचारों से मुक्त होने में ही मानव-समाज का श्रेय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org